|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

1/6 (श्लोक 1-6), रविवार, 01 सितंबर 2024

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/XAzGpaxHvP8

त्याग तथा संन्यास की तत्त्वतः व्याख्या

आज के सत्र का शुभारम्भ प्रार्थना, दीप प्रज्वलन, हनुमान चालीसा पाठ तथा गुरु वन्दना के साथ हुआ।

श्रीभगवान की अतिशय मङ्गलमय कृपा से हमारा ऐसा सद्भाग्य जागृत हुआ कि हम अपने जीवन को सार्थक करने के लिए, सफल करने के लिए, इस जीवन का सच्चा उद्देश्य प्राप्त करने के लिए तथा इस जीवन को पूर्ण लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए श्रीमद्भगवद्गीता के चिन्तन-मनन, पठन-पाठन, उसके उच्चारण को सीखने, उसके अर्थ को जानने, उसके सूत्रों को समझने तथा जीवन में अपनाने में लग गए।

इस अट्ठारहवें अध्याय का विवेचन अत्यन्त विशिष्ट है। सन्त ज्ञानेश्वर महाराज ने इस अध्याय को **एक अध्यायी गीता** कहा है क्योंकि इसमें सम्पूर्ण गीताजी का सार है अर्थात् सम्पूर्ण गीताजी के सत्रह अध्यायों में से कुछ-कुछ छूट भी गया होगा और यदि इस एक अध्याय को ठीक से जान लिया, तो पूरी गीताजी ध्यान में आ जाती हैं। अट्ठारहवें अध्याय को श्रीमद्भगवद्गीता का सार कहा गया है।

एक बार एक व्यक्ति के घर की घड़ी की बैटरी धीमी पड़ गई थी। उस व्यक्ति को रेल से कहीं जाना था। उसने सोचा कि चार बजे निकलने पर भी वह आसानी से ट्रेन को पकड़ लेगा। संयोगवश उसे यह बात पता नहीं थी कि उसके कमरे की घड़ी की बैटरी कमजोर है। घड़ी धीरे-धीरे चल रही थी। जब घड़ी के काँटे चार पर पहुँचे तो उसने सोचा कि चार बज गए हैं, अभी निकलना चाहिए। वास्तव में साढ़े चार बज गए थे और उसे समय का अनुमान नहीं हो पाया था। उसने रिक्शा वाले से कहा कि पाँच बजे की ट्रेन है। रिक्शा वाले ने कहा कि अब तो साढ़े चार बज गए हैं। उसने मोबाइल में देखा साढ़े चार बज गए थे। वह तेजी से स्टेशन की ओर रवाना हुआ। प्लेटफार्म पर जैसे-तैसे पहुँचा तो देखा कि ट्रेन चलने के लिये तैयार थी। तीव्र गति से सीढ़ियाँ उतरकर भागते हुए वह अन्तिम डिब्बे में चढ़ गया और ठण्डी साँस लेकर बोला कि अच्छा हुआ, अन्ततः ट्रेन पकड़ में आ ही गई अर्थात् जिस प्रकार अन्तिम डिब्बे को पकड़ने से ट्रेन मिल जाती है उसी प्रकार यदि अभी तक कुछ-कुछ बातें रह भी गई होंगी तो इस अन्तिम अट्ठारहवें अध्याय को ठीक से सुन लेंगे तो पूरी ट्रेन पकड़ में आ जाएगी।

अट्ठारह का अङ्क भी अत्यन्त विशिष्ट अङ्क है। यह संयोग नहीं है कि हमारे पुराण अट्ठारह हैं। महाभारत में अट्ठारह पर्व हैं। महाभारत का युद्ध भी अट्ठारह दिन हुआ था। गीताजी के भी अट्ठारह अध्याय हैं। नौ की सङ्ख्या हमारे यहाँ पूर्णाङ्क मानी गई है। गणित में नौ को जादुई अङ्क माना जाता है। इसका कारण है कि नौ का पहाड़ा विशेष है। इसकी सभी सङ्ख्याओं के गुणनफल का योग नौ ही आता है इसलिए हमारे यहाँ नौ और अट्ठारह पर बहुत सारी बातें आधारित हैं।

यह अध्याय पूर्ण अध्याय कहा गया है क्योंकि इस अध्याय में श्रीभगवान ने कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग- तीनों का विश्लेषण कर

दिया है। अध्याय का आरम्भ अर्जुन के प्रश्न से हुआ है, किन्तु इस प्रश्न की कुछ मौलिकता भी है। बारहवें अध्याय के प्रथम श्लोक में अर्जुन ने इसी प्रकार का प्रश्न किया था। अर्जुन ने पूछा कि ज्ञान और भक्ति में क्या अन्तर है, अर्थात् सगुण और निर्गुण उपासना में से मेरे लिये कौन सी श्रेष्ठ है? श्रीभगवान ने उसका उत्तर दे भी दिया और दो अतिरिक्त और भी बहुत से साधन बता दिये। फिर बारहवें श्लोक में श्रीभगवान ने उसका तुलनात्मक अध्ययन भी बता दिया-

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥

श्रीभगवान ने उसका विश्लेषण करते हुये कह दिया, "अर्जुन! अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है, ध्यान से कर्मों के फल का त्याग श्रेष्ठ है। फिर श्रीभगवान ने त्याग की महिमा बताते हुये कहा कि त्याग इसलिए श्रेष्ठ है क्योंकि त्याग से तत्काल शान्ति प्राप्त होती है।

श्रीभगवान ने तीसरे अध्याय के तीसरे-चौथे श्लोक में भी अर्जुन को एक बात कही थी, लेकिन वह विषय भी वहीं पर रह गया। श्रीभगवान ने कहा-

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ |

ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ||

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।

न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ।।

श्रीभगवान ने कहा, 'अर्जुन! इस लोक में दो प्रकार की निष्ठा की बात मेरे द्वारा कही गई है। उनमें से साङ्ख्ययोगियों की निष्ठा ज्ञानयोग से तथा कर्मयोगियों की निष्ठा कर्मयोग से होती है। मनुष्य कर्मों का आरम्भ किए बिना योग्य निष्ठा को प्राप्त नहीं होता है और कर्मों का त्याग करने से ही वह साङ्ख्य निष्ठा को प्राप्त होता है।'

श्रीभगवान ने पूरी श्रीमद्भगवद्गीता में त्याग शब्द का प्रयोग बीस बार किया है और चौदह बार संन्यास शब्द का प्रयोग किया है। इसका तात्पर्य है कि त्याग और संन्यास श्रीभगवान के केन्द्र बिन्दु हैं। दूसरी ओर अर्जुन की वृत्ति आरम्भ से ही यह है कि मैं संन्यास लेकर, कर्म का त्याग करके भाग जाऊँ। उन्होंने पहले अध्याय में भी यही कहा, दूसरे अध्याय में भी यही कहा। श्रीभगवान त्याग और संन्यास की प्रशंसा भी करते हैं और जब बारहवें अध्याय के बारहवें श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं कि त्याग से तत्काल शान्ति प्राप्त होती है, तो अर्जुन कहते हैं कि मुझे यही तो चाहिए। मुझे तो भागना ही है। किसी प्रकार से मैं इस युद्ध से निवृत्त हो जाऊँ और संन्यास लेकर जङ्गल में रह लूँ, यही तो मैं चाहता हूँ। अर्जुन का मस्तिष्क त्याग और संन्यास के मध्य घूम रहा है।

जब बारहवें अध्याय में श्रीभगवान ने त्याग के विषय में कहा तो अर्जुन के मन में त्याग अटक गया, लेकिन फिर तेरहवें अध्याय में श्रीभगवान ने ज्ञानी के लक्षण बता दिये, चौदहवें अध्याय में गुणातीत के बता दिये, पन्द्रहवें अध्याय में पुरुषोत्तमयोग बता दिया, सोलहवें अध्याय में दैवासुरसंपद्विभागयोग बता दिया, फिर श्रद्धा की बात बता दी, तो अर्जुन को लगा कि श्रीभगवान श्रद्धा की बात बता कर मुझसे यही तो नहीं मनवा लेंगे। अनायास अर्जुन के मस्तिष्क में आया कि कहीं श्रीभगवान यहाँ अपनी बात पूरी तो नहीं कर देंगे? इससे पहले मैं अपना प्रश्न पूछ लूँ। अर्जुन ने श्रीभगवान से कुछ प्रश्न किए।

प्रश्नकर्ता तीन प्रकार के होते हैंः-

1) कुछ प्रश्नकर्ता वक्ता के ज्ञान की परख करने के लिए प्रश्न पूछते हैं।
2) कुछ प्रश्नकर्ता अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए प्रश्न करते हैं।
3) जो उत्तम प्रश्नकर्ता होते हैं, वे यह जानने के लिए प्रश्न करते हैं कि मुझे क्या करना चाहिए?

अर्जुन ने श्रीभगवान से सारे प्रश्न न तो उनका ज्ञान जाँचने के लिए किए, न ही अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए किए, अपितु अर्जुन के समस्त प्रश्न इस बात पर आधारित हैं कि उन्हें क्या करना है और कैसे करना है?

युद्ध का मैदान है, सेनाएँ युद्ध के लिये सज्जित हैं और चालीस मिनट तक अर्जुन शङ्काएँ प्रकट कर रहे हैं और श्रीभगवान उनकी शङ्काओं का निवारण प्रसन्नता से मुसकुराते हुये कर रहे हैं। अर्जुन ने सोचा कि बार-बार संन्यास और त्याग का वर्णन किया जा रहा है किन्तु अभी तक इसका अन्तर समझ में नहीं आया।

वास्तविकता में त्याग और संन्यास का अन्तर इतना सूक्ष्म है कि बड़े-बड़े विद्वान और योगी भी चक्कर में पड़ जाते हैं।

हमारी परम्परा में है कि यदि किसी से कोई महत्त्वपूर्ण बात पूछनी है तो जिससे प्रश्न करना है, उन्हें प्रसन्न करके प्रश्न पूछा जाता है। श्रीभगवान ने कहा है-

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

श्रीभगवान कहते हैं कि पहले उन्हें प्रणिपातेन अर्थात् प्रणाम करो, उनकी सेवा करो, प्रसन्न करो, फिर प्रश्न करो और उनसे ज्ञान प्राप्त करो।"

अर्जुन ने ग्यारहवें अध्याय में श्रीभगवान का विश्वरूप भी देख लिया, तो अब उन्हें ज्ञात है कि श्रीभगवान तो परब्रह्म परमात्मा हैं। उन्हें ज्ञात है कि अब बहुत अधिक प्रश्न नहीं करने हैं। अर्जुन प्रश्न करते हैं-

18.1

अर्जुन उवाच
सन्न्यासस्य महाबाहो, तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश, पृथक्केशिनिषूदन॥18.1॥

अर्जुन बोले - हे महाबाहो ! हे हृषीकेश ! हे केशिनिषूदन ! (मैं) संन्यास और त्याग का तत्त्व अलग-अलग जानना चाहता हूँ।

विवेचन: यह श्रीमद्भगवद्गीता का एकमात्र श्लोक है जहाँ पर अर्जुन ने श्रीभगवान को तीन सम्बोधन किए हैं। दो सम्बोधन तो और भी दो श्लोकों में आते हैं, किन्तु एक व्यक्ति को तीन सम्बोधन किए गए हों, ऐसा यह एकमात्र श्लोक है।

अर्जुन ने श्रीभगवान को पहला सम्बोधन **केशिनिषूदन** किया। श्रीभगवान ने केश नामक राक्षस का वध किया था जो घोड़े का रूप रखकर श्रीभगवान के समक्ष आया। उस महा भयङ्कर अश्व को श्रीभगवान ने अपने बाहुबल से परास्त किया है।

घोड़ा शक्ति का प्रतीक है। हमारे घर में पानी चढ़ाने वाली मोटर को बोलते हैं कि डेढ़ या दो हॉर्सपावर (अश्वशक्ति) की मोटर है। इसका अर्थ है कि इस मोटर में दो घोड़ों की शक्ति है। एक मोटर कार की क्षमता को हम हॉर्सपावर में नापते हैं। हम कहते हैं कि इसका इञ्जन दस हॉर्सपावर का है इसलिए अश्वशक्ति को शक्ति का प्रतीक माना गया है।

महाबाहो- महाबाहो का अर्थ है अत्यन्त बलशाली, बाहुबली। इतने शक्तिशाली अश्व को भी अपने बाहुबल से मार डालने वाले, इसलिए अर्जुन ने श्रीभगवान को महाबाहो नाम से पुकारा है।

हृषीकेश- हृषि+केश का अर्थ है जिसका अपने मन और इन्द्रियों पर सम्पूर्ण नियन्त्रण है। श्रीभगवान को अर्जुन ने इस नाम से इसलिए पुकारा है क्योंकि वे मानते हैं कि ईश्वर बाहर से भी पूर्ण शक्तिशाली हैं और अन्दर से भी पूर्ण शक्तिशाली हैं। जिसने मन को जीत लिया, उसने जग को जीत लिया। जो अपने मन को जीत लेता है, वह सम्पूर्ण जगत को जीत लेता है।

अर्जुन ने श्रीभगवान को प्रसन्न करने के लिए तीन उपाधियों से विभूषित किया और कहा, **'हे महाबाहो! हे हृषीकेश! हे केशिनिषूदन! वासुदेव! मैं संन्यास तथा त्याग को पृथक-पृथक तत्त्वतः जानना चाहता हूँ।'** अर्जुन के द्वारा सुन्दर प्रश्न करने पर

श्रीभगवान अत्यन्त प्रसन्न हो गए। श्रीभगवान को ऐसे श्रोता बहुत प्रिय होते हैं जो गहरी बात पूछते हैं।

18.2

श्रीभगवानुवाच
काम्यानां(ङ्) कर्मणां(न्) न्यासं(म्), सन्न्यासं(ङ्) कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं(म्), प्राहुस्त्यागं(म्) विचक्षणाः॥18.2॥

श्रीभगवान् बोले - (कई) विद्वान् काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास समझते हैं (और) (कई) विद्वान् सम्पूर्ण कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं। कई विद्वान ऐसा कहते हैं कि कर्मों को दोष की तरह छोड़ देना चाहिये और कई विद्वान ऐसा (कहते हैं कि) यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंका त्याग नहीं करना चाहिये। (18.2-18.3)

विवेचन: श्रीभगवान कहते हैं, "अर्जुन! पण्डितजन काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास समझते हैं और अन्य विचारशील पुरुष सब कर्मों के फल के त्याग को संन्यास समझते हैं। यहाँ श्रीभगवान ने **काम्य कर्म** शब्द का प्रयोग किया है। इसका तात्पर्य है कि कर्मों के भी अनेक प्रकार हैं।

इसे हम एक स्लाइड के माध्यम से जानेंगे-

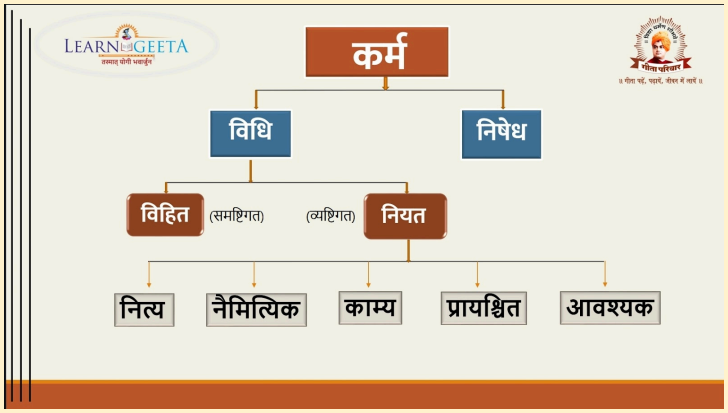

मूलतः दो प्रकार के कर्म होते हैं - **विधि कर्म, निषिद्ध कर्म**

विधि कर्मः करने योग्य कर्म।
निषिद्ध कर्मः नहीं करने योग्य कर्म।

हम यहाँ करने योग्य विधिकर्म की ही बात करते हैं। करने योग्य विधिकर्म दो प्रकार के होते हैं - **विहित कर्म और नियत कर्म।**

विहित का अर्थ है समष्टिगत अर्थात् ऐसा होना चाहिए। नियत कर्म का अर्थ है व्यष्टिगत, अर्थात् मैं यह करूँ।

मान लीजिए कि निर्णय लिया गया कि हम पूज्य स्वामी जी महाराज से नगर में कथा करवाएँगे, हम अपने नगर में मैत्री मिलन करवाएँगे। एक आयोजन का निर्णय- यह विहित कर्म है। इसके लिए क्या करना है? किस प्रकार करना है? कहाँ पर कथा करवाना उचित होगा? कितना बड़ा टेण्ट लगेगा? कितनी कुर्सियाँ लगेंगी? अन्य क्या व्यवस्था करनी है? कथा के लिए मञ्च किस प्रकार का बनाना है? कौन क्या काम करेगा? यह नियत करना है, इत्यादि सब कुछ तय किया जाता है। यह विहित कर्म है। विहित कर्म में से जो कर्म व्यक्ति विशेष के लिए नियत हो गया, वह है नियत कर्म।

माता को अपने बच्चे की अच्छी देख-भाल करनी चाहिए, यह विहित कर्म है और मुझे अपने बच्चे के लिए सुबह स्कूल का टिफिन बना कर देना है, यह मेरा नियत कर्म है। माता को बच्चे को पौष्टिक भोजन देना एक विहित कर्म है किन्तु मुझे अपने बच्चे को सुबह स्कूल जाने से पहले उसका टिफिन बना कर देना है, यह मेरा नियत कर्म है।

नियत कर्म पाँच प्रकार के होते हैं- नित्य कर्म, नैमित्यिक कर्म, काम्य कर्म, प्रायश्चित कर्म तथा आवश्यक कर्म।

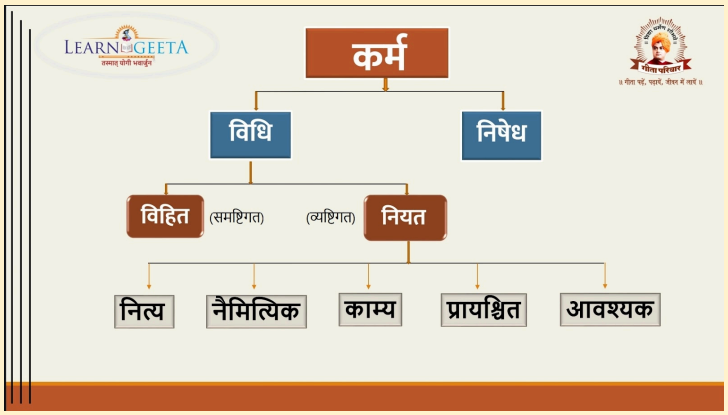

1. नित्य कर्म: जो कर्म हमने नित्य का नियम लेकर किए, जैसे मैं प्रतिदिन तीन माला रोज जप करूँगा, मैं प्रतिदिन आधे घण्टे व्यायाम करूँगा, प्रतिदिन ध्यान करूँगा। शिष्य ने गुरु जी से पूछा कि मैं प्रतिदिन गीताजी का पाठ कर लिया करूँ? नियम ले लूँ? गुरु जी ने कहा कि पाठ तो प्रतिदिन करना किन्तु नियम पूरी गीताजी का नहीं लेना। आरम्भ में एक या तीन अध्याय का ही नियम लो। जब यह नियमित होने लगे तब चाहे तुम पूरी गीताजी का नियम लेना, अर्थात् नित्य कर्मों में जो भी नियम लें, वह छूटे नहीं, क्योंकि उन नियमों के भङ्ग होने पर प्रायश्चित करना पड़ता है, नहीं तो दोष लगता है।

नित्यकर्म समय साध्य होना चाहिए, बल साध्य होना चाहिए किन्तु धन साध्य नहीं होना चाहिए। धन से होने वाला कर्म नित्य कर्म नहीं कहलाता। ऐसा नित्य नियम लेना नहीं चाहिए जिससे किसी को असुविधा हो। कभी-कभी व्यक्ति ऐसे नियम ले लेते हैं कि मैं चार बजे उठकर शङ्ख बजाऊँगा, मैं सङ्गीत का अभ्यास करूँगा और सुबह चार बजे माइक लगा कर हारमोनियम बजा कर बेसुरे गले से गाऊँगा। इससे आपके घर वालों तथा पड़ोसियों, सभी को असुविधा होगी।

हमारे समाज में एक माला प्रतिदिन करने वाले व्यक्ति भी हैं और चालीस वर्ष से एक लाख से दो लाख नामजप करने वाले व्यक्ति भी हैं।

नित्य नियम आसान होने चाहिए। जैसे पहली रोटी गाय की, आखिरी रोटी कुत्ते की। हम इन बातों को भूल गए।

प्रातःकाल उठि कै रघुनाथा, मातु पिता गुरु नावहिं माथा |

हम प्रतिदिन प्रातः काल सोकर उठते ही माता-पिता, गुरु को प्रणाम करें। प्रतिदिन उठते ही प्रातः स्मरण मन्त्र का वाचन करें-

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती ।

करमूले स्थिता गौरी, प्रभाते करदर्शनम् ॥

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले ।

विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्वमे ॥

हम भूमि माता को प्रणाम करें क्योंकि हमें उनके ऊपर अपने चरण रखने पड़ रहे हैं। हमें इस प्रकार के शुभ नियम लेने चाहिए। यह हमारे नित्य कर्म हैं।

जिसके नित्य कर्मों की नियमावली जितनी सुन्दर होती जाती है, उसका जीवन उतना श्रेष्ठ बनता जाता है। कुछ व्यक्ति कहते हैं कि ज्यादा कर्मकाण्ड हमसे नहीं होता जबकि हम बहुत आध्यात्मिक हैं। वास्तव में वे आध्यात्मिक नहीं बल्कि आलसी होते हैं।

श्रद्धेय ब्रह्मलीन सेठ जयदयाल जी गोयन्दका गीताप्रेस के संस्थापक थे। वह नियमों के बड़े आग्रही थे। बहुत बड़े महापुरुष थे, उनके नियमों की बात तो हम कर ही नहीं पाएँगे। वह भोजन में चार वस्तुएँ ही लेते थे, स्त्रीमुख का दर्शन नहीं करते थे। उनके नियमों की सूची बहुत लम्बी है।

(विवेचक ने अपना एक व्यक्तिगत अनुभव साझा किया। उन्हीं के शब्दों में-" उन्हें भी नियमों का आग्रह रहा है। उनके एक घनिष्ठ मित्र हैं। जब वे छोटे थे, तब ऋषिकेश जाया करते थे। एक पुस्तक में कुछ छपा था तो उनका मित्र वह पुस्तक लेकर विवेचक के पास आया और बोला कि तुम्हें नियम बहुत पसन्द हैं न, देखो सेठजी ने भी ऐसी बात लिखी है। उसने अपनी अङ्गुली से ढक कर आधी पङ्क्ति विवेचक को पढ़ाई। बोला कि देखो सेठजी ने लिखा है कि साधक को छोटे-छोटे नियम बनाने चाहिए। विवेचक प्रसन्न हो गये कि देखो सेठजी ने उनके मन की बात कह दी। वास्तव में वह बात सुन कर, पढ़ कर ही अपनाई गई थी। फिर मित्र ने अङ्गुली हटा कर आगे पढ़ने के लिए कहा। उसमें सेठजी ने कहा था कि साधक को छोटे-छोटे नियम बनाने चाहिए और प्राण देकर भी उनकी रक्षा करनी चाहिए। हम चाहे प्राण देकर उनकी रक्षा न करें किन्तु प्रायश्चित करके तो करनी चाहिए।)

2: नैमित्यिक कर्म- किसी निमित्त से कोई कर्म करना इस श्रेणी में आता है। विवाह उत्सव, घर में पुत्र प्राप्ति, पर्व आदि, जन्म-मृत्यु आदि पर जो कर्म किए जाते हैं, वे नैमित्यिक कर्म कहलाते हैं।

अयोध्या काण्ड में एक अद्भुत वर्णन है। भगवान श्रीराम को वनवास का समाचार मिला। लक्ष्मण जी को ज्ञात हुआ तो वह भाग कर गए कहा कि भैया यह बहुत गलत बात है, हमें इसका विरोध करना चाहिए। रामजी ने कहा कि पिताजी की बात का विरोध नहीं किया जाता, हमें तो आज्ञा का पालन करना है। लक्ष्मण जी ने भगवान राम को मना लिया कि मैं आपके साथ चलूँगा। रामजी ने बहुत समझाने का प्रयास किया किन्तु लक्ष्मणजी नहीं माने। तब रामजी ने कहा कि माता की आज्ञा लेकर आओ। फिर हम शीघ्र वन चलेंगे।

मागहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई ॥

मुदित भए सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी ||

अभी तक लक्ष्मणजी क्रोध में थे, रो रहे थे। जैसे ही रामजी ने आज्ञा लेकर आने को कहा, वह बिल्कुल छोटे बच्चे की भाँति प्रफुल्लित हो गए। माता की आज्ञा लेने गए और हर्षित भाव से बोले-

हरषित हृदयँ मातु पहिं आए । मनहुँ अन्ध फिरि लोचन पाए ।
जाइ जननि पग नायउ माथा । मनु रघुनन्दन जानकि साथा ।।

लक्ष्मण जी ने माता सुमित्रा को दण्डवत प्रणाम किया। प्रणाम तो माता को कर रहे थे, परन्तु मन भगवान राम और माता जानकी की तरफ लगा हुआ था-

पूँछे मातु मलिन मन देखी । लखन कही सब कथा बिसेषी ।।
गई सहमि सुनि बचन कठोरा । मृगी देखि दव जनु चहु ओरा ।।

माता सुमित्रा के पूछने पर लक्ष्मण जी ने विस्तार से वनवास की बात बताई। अभी तक माता को कुछ भी ज्ञात नहीं था, वे तो रामजी के राजतिलक की तैयारी में लगी थीं, जैसे ही उन्होंने यह समाचार सुना, माता सुमित्रा सहम कर ऐसे भागीं जैसे छोटी सी हिरनी जङ्गल की आग में फँसकर सहम जाए। जैसे ही लक्ष्मण ने माता को सहमा हुआ देखा, वे भी विषाद में आ गए-

लखन लखेउ भा अनरथ आजू । एहिं सनेह बस करब अकाजू ।।
मागत बिदा सभय सकुचाहीं । जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं ।।

डर के मारे लक्ष्मण जी विदा नहीं माँग पा रहे हैं कि माता सुनकर ही सहम गयीं तो फिर मुझे विदा कैसे करेंगी? अगर माँ ने अनुमति

नहीं दी तो भगवान लेकर नहीं जाएँगे। लक्ष्मण जी बड़ी कठिनाई में आ गए! यहाँ सुमित्रा जी का चरित्र देखने योग्य है। पूज्य मोरारी बापू जी ने एक बार अद्‌भुत मानस सुमित्रा कथा कही थी।

समुझि सुमित्राँ राम सिय रूप सुसीलु सुभाउ ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ ।।

सुमित्राजी ने अपना माथा धुना और कहा पापिनी कैकई ने पूरा वंश खराब कर दिया।

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी । सहज सुहृद बोली मृदु बानी ।।

तात तुम्हारि मातु बैदेही । पिता रामु सब भाँति सनेही ।।

अवध तहाँ जहँ राम निवासू । तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू ।।

सुमित्रा जी ने धीरज रखकर कहा कि अब तुम्हारी माता भगवती जानकीजी और पिता रामजी हैं। जहाँ राम जी का निवास है, वहीं तुम्हारी अयोध्या है, जैसे जहाँ सूर्य प्रकाश हो, वहीं दिन है।

जौ पै सीय रामु बन जाहीं । अवध तुम्हार काजु कछु नाहिं ।।

माता ने कहा जब राम जी, सीता जी यहाँ नहीं रहे तब तुम्हारा यहाँ क्या काम?

गुर पितु मातु बंधु सुर साईं । सेइअहिं सकल प्रान की नाईं ।।

रामु प्रानप्रिय जीवन जी के । स्वारथ रहित सखा सबही कै ।।

“गुरु, माता, पिता, भाई, देवता, स्वामी इन सबकी जी-जान से सेवा करनी चाहिए। राम जी तुम्हे प्राणों से भी प्रिय हैं। तुम्हारा जीवन हैं। तुम्हें वन में कोई कष्ट नही होगा। उन्हें तुम्हारे होते कष्ट नहीं होना चाहिए। तुम्हारे साथ सीताजी और रामजी हैं। वहीं तुम्हारा सुख है। उनकी सेवा करना ताकि उन्हें कोई कष्ट न हो।”

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें।।

अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू।।

माता कहती हैं कि लक्ष्मण! मैं तो तुम्हारे भाग्य पर गर्व कर रही हूँ-

भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ ।

जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ ॥

माता कहती हैं कि मैं ऐसे पुत्र को प्राप्त करके धन्य हो गई, जिसके चित्त में किसी प्रकार का छल-कपट नहीं है और तुमने रामजी के चरणों में स्थान प्राप्त कर लिया है।

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥

माता कहती हैं कि लक्ष्मण! मुझे तो ऐसा लग रहा है कि केवल तुम्हारे भाग्य के कारण रामजी वन जा रहे हैं। तुम उनकी सेवा कर सको जिससे तुम्हारा जीवन धन्य हो जाए, इसलिए तुम्हारे भैया वन जा रहे हैं। माता ने कहा कि तुम हर प्रकार से रामजी और सीताजी की सेवा करना।

लक्ष्मण जी को नैमित्तिक कर्म मिला, नैमित्तिक सेवा मिली। धन्य हैं माता सुमित्रा! उन्होंने यह नहीं सोचा कि मैं माँ हूँ, कैसे अपने पुत्र

को वन में भेज दूँ? लक्ष्मणजी ने तो अपना नैमित्यिक कर्म किया, लेकिन माता सुमित्रा का स्थान उनसे भी ऊँचा हो जाता है जिन्होंने अपने पुत्र को चौदह वर्ष के लिए वन में भेज दिया कि जहां रामजी हैं वहीं अयोध्या है।

3. काम्य कर्म: कामना की पूर्ति के लिए किए गए कर्म काम्य कर्म कहलाते हैं। इष्ट (इच्छित) की प्राप्ति, अनिष्ट की निवृत्ति अर्थात् मुझे जो चाहिए, वह मुझे मिल जाए और जो मुझे नहीं चाहिए, वह चला जाए। यह काम्य कर्म है।

दशरथ जी पुत्र की कामना से वशिष्ठ मुनि के पास गए-

एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरें सुत नाहीं॥

वशिष्ठ मुनि ने श्रृङ्गी ऋषि को बुलाया-

सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥

दशरथजी ने पुत्र-कामेष्टि यज्ञ किया। यह काम्य कर्म है। सांसारिक कामना की पूर्ति के लिए किए जाने वाले सभी कर्म काम्य कर्म हैं।

4: प्रायश्चित कर्म- किसी भी भूल के लिए प्रायश्चित करना। आजकल इसका चलन बहुत कम हो गया है। अब से बीस वर्ष पहले तक की पीढ़ी में प्रायश्चित करने का विधान मिलता था। घर में चूहा-बिल्ली मर जाते थे तो उसके निमित्त दान किया जाता था। यह बड़े आवश्यक कर्म होते हैं, इन कर्मों को करने से अगले जन्म में इन पापों को भुगतना नहीं पड़ता है।
किसी भी भूल का प्रायश्चित कर्म करने के कई उपाय हैं- मौन रहना, दान-अनुष्ठान करना, पाठ करना, जप करना, ध्यान करना, भोजन का त्याग, अपनी प्रिय वस्तु का त्याग इत्यादि।

गाँधीजी ने वर्ष उन्नीस सौ तीस में विदेशी वस्त्रों के त्याग के लिए आह्वान किया। इस आह्वान की गूँज इतनी प्रबल थी कि पूरे देश में लाखों लोगों ने अपने विदेशी वस्त्रों की होली जलाई। प्रातःकाल जब गाँधी जी भ्रमण के लिए निकले तो उन्होंने देखा कि बहुत सारे लोगों के तन पर वस्त्र ही नहीं हैं। लोगों ने बताया कि जिनके पास सारे विदेशी वस्त्र थे, उनको जला दिया। अब वे निर्वस्त्र घूम रहे हैं, तो गाँधीजी को बहुत पश्चात्ताप हुआ। जीवन भर के लिए उन्होंने वस्त्रों का त्याग कर केवल आधी धोती में निर्वाह करने का प्रण किया। उन्होंने इस कथन का इतना बड़ा प्रायश्चित जीवन भर किया। वर्ष उन्नीस सौ तैंतीस में गाँधीजी गोल मेज सम्मेलन के लिए ठिठुरती सर्दी में भी वही आधी धोती में ब्रिटेन गए। लोगों ने बहुत कहा कि कोट पहन लें पर वे माने नहीं। पूरा जीवन आधी धोती में ही रहे। तिलक जी ने पूछा कि **'केवल आपके वस्त्र त्यागने से कितने लोगों को वस्त्र मिल जाएँगे?'** इस पर गाँधी जी ने कहा कि **"एक को भी नहीं, पर इससे मेरी आत्मा का क्लेश मिटेगा और जिनके वस्त्र मेरे कारण चले गए, उनका दुःख जरूर कम हो जाएगा।"**

यह प्रायश्चित कर्म है। मेरे कारण अनिष्ट हुआ, बुरा हुआ। किसी के साथ गलत हो जाए उस पर यह प्रायश्चित कर्म किए जाते हैं। छोटे-छोटे दण्ड जैसे- एक समय का भोजन छोड़कर, चुप रह कर, अपनी आदत छोड़कर, कुछ दिन के लिए मीठा छोड़ कर, जो भी प्रिय है, उसका कुछ समय के लिए त्याग कर प्रायश्चित कर्म किए जाते हैं।

5. **आवश्यक कर्म-** जीवन-यापन के लिए हम जो भी कर्म करते हैं, जैसे खाना, सोना, स्नान करना, आजीविका कमाना, व्यापार करना, इत्यादि सभी आवश्यक कर्म हैं।

एक राजा था। उसके राज्य की पूरी भूमि कहीं भी समतल नहीं थी, अत्यन्त विषम परिस्थिति थी। कहीं बड़े-बड़े पत्थर थे तो कहीं रेत थी। उसके राज्य में एक भी घर सुन्दर नहीं था क्योंकि असमतल जमीन पर घर ठीक से बन नहीं सकते थे। राजा परेशान हो गया। संयोगवश पड़ोसी राज्य का एक गुणी राजमिस्त्री उस राज्य में आया। उसने राजा से भेंट की और कहा कि मैं आपकी इस भूमि पर सुन्दर-सुन्दर घर बना दूँगा। राजा ने सहमति प्रदान कर दी और दो वर्ष में उसने सैकड़ों घर बनाए। राजा उसके काम से बड़े प्रसन्न हुए और उसे पारिश्रमिक दिया। वह वापस जाना चाहता था तो राजा ने कहा कि यहीं रहो पर उसने आनाकानी की। राजा ने कहा कि तुम जाना चाहते हो, वह तो ठीक है लेकिन जाने से पहले मेरे महल के पीछे बागीचे में एक खूबसूरत सा घर बना कर जाओ, जिसके लिए तुम्हें जो भी चाहिए, वह मिलेगा। उसे अपने घर जाने की तीव्र इच्छा थी पर राजा की आज्ञा का सम्मान करते हुए उसने बड़े बेमन से पन्द्रह दिन में एक घर बना दिया। राजा ने कहा कि जाओ अपने परिवार के साथ वहाँ रहो। वह बहुत पछताया कि राजा ने तो खुला आदेश दिया था कि जैसा चाहो वैसा बनाओ। मैंने यह क्या कर दिया? अत:अपना आवश्यक कर्म पूरी ईमानदारी से करना चाहिए।

श्रीभगवान कहते हैं कि काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास और कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं। यहाँ हम चार बातों को

दृष्टिगत रखते हुए विचार करेंगे।

पहली बात है काम्य कर्मों का त्याग। इसे संन्यास कहते हैं। साधु कभी कामना पूर्ति के लिए कोई कर्म नहीं करते। गृहस्थ को इसकी आज्ञा है।

हम मन्दिर जाते हैं तो अपनी माँगों की बहुत लम्बी सूची लेकर जाते हैं। काम्य कर्मों का त्याग करना है तो मन्दिर जाकर कुछ न माँगें।

दूसरी बात है सब कर्मों के फल की इच्छा का त्याग। फल का त्याग कोई नहीं कर सकता, जैसे बीज बोया है तो फल तो उगेगा ही, पर उगेगा या नहीं, इसकी आसक्ति का त्याग करूँगा। बीज बोने से पेड़ लगेगा, इस आसक्ति का त्याग करना ही श्रेष्ठ है।

तीसरी बात है दोषयुक्त कर्मों का त्याग।

चौथी बात है यज्ञ, दान और तप का त्याग कभी नहीं करना चाहिए।

इसमें पहली और तीसरी बात संन्यास है और दूसरी तथा चौथी बात त्याग है।

18.3

त्याज्यं(न्) दोषवदित्येके, कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपःकर्म, न त्याज्यमिति चापरे॥18.3॥

विवेचन: श्रीभगवान कहते हैं कि अर्जुन! कुछ विद्वान ऐसा भी कहते हैं कि कर्मफल दोषयुक्त होता है, इसलिए त्याज्य है। पर कुछ यह भी कहते हैं कि तप, दान तथा यज्ञ का त्याग नहीं कर सकते।

18.4

निश्चयं(म्) शृणु मे तत्र, त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र, त्रिविधः(स्) सम्प्रकीर्तितः॥18.4॥

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! (तू) संन्यास और त्याग - इन दोनों में से पहले त्याग के विषय में मेरा निश्चय सुन; क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ ! त्याग तीन प्रकार का कहा गया है।

विवेचन:-अर्जुन ने पहले श्लोक में श्रीभगवान को तीन उपाधि दी तो चौथे श्लोक में श्रीभगवान ने अर्जुन को दो उपाधि वापस कर दी। तीन मुझे देता है तो दो तू वापस ले ले। नर और नारायण हैं। नारायण को तीन उपाधि तो नर को भी दो उपाधि।

पहली **पुरुष-व्याघ्र** दूसरी **भरतसत्तम**। पुरुष व्याघ्र यानी पुरुषों में सिंह, शेर, अत्यन्त बलवान, श्रेष्ठतम पुरुष। दूसरी भरतसत्तम, अर्थात् तुम भरतवंशी हो। भरत वंश में श्रेष्ठ। हे प्रिय अर्जुन! तू सन्यास और त्याग के विषय में, पहले त्याग के बारे में मुझसे सुन। त्याग सात्त्विक, राजस, तामस तीन प्रकार का होता है। श्रीभगवान ने अर्जुन को त्याग की विस्तृत व्याख्या की।

18.5

यज्ञदानतपःकर्म, न त्याज्यं(ङ्) कार्यमेव तत्।

यज्ञो दानं(न्) तपश्चैव, पावनानि मनीषिणाम्॥18.5॥

यज्ञ, दान और तपरूप कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिये, (प्रत्युत) उनको तो करना ही चाहिये (क्योंकि) यज्ञ, दान और तप - ये तीनों ही (कर्म) मनीषियों को पवित्र करनेवाले हैं।

विवेचन: श्रीभगवान कहते हैं त्यागने की बात छोड़ो, करने की बात करो। अर्जुन! यज्ञ, दान, तप- ये कर्म त्याग करने योग्य नहीं हैं। आवश्यक कर्म बुद्धिमान पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं। जो तुम बार-बार भागने की बात कर रहे हो न, वह छोड़ो। त्याग में भी क्या करना है? श्रीभगवान ने यह बात पहले बताई। यज्ञ का अर्थ है त्याग। यज्ञ, दान, तप मनुष्य को पवित्र करने वाले होते हैं। यज्ञ का अर्थ है त्याग।

उदाहरण स्वरूप- मैं डॉक्टर के यहाँ पहुँचा, मेरे पास कुछ समय है, वहाँ पर एक ज्यादा गम्भीर रोगी दिखा तो मैंने उनसे कहा कि पहले आप दिखा दें। अपने नम्बर का त्याग- यह यज्ञ है। जिसे अधिक आवश्यकता है उसे पहले मिल जाए। घर में आए छोटे भाई के बालक को दो आम ज्यादा दे दिए। किसी को बतलाया नहीं, यह यज्ञ हो गया। छोटी-छोटी बातों में त्याग करने की आदत बन जाए। त्याग को बड़ा मानकर कभी न करिए। ऐसे लोग भी होते हैं जो कथा, प्रवचन में कुर्सी पर बैठ जाते हैं। कारण, जैसे ही कोई वृद्ध व्यक्ति आएगा मैं उसे कुर्सी देकर नीचे बैठ जाऊँगा। जो कभी-कभी त्याग करता है, उसे गर्व होता है।

गुरु नानकजी कहते हैं

"तीरथ जप और दान करें। मन में करे गुमान।

नानक निष्फल जात है जो कुन्जर स्नान।।

हाथी बहुत देर तक स्नान करता है और बाहर आकर अपने शरीर की नमी को बनाए रखने के लिए अपने ऊपर मिट्टी डाल लेता है। इतना स्नान किया और मिट्टी डाल ली तो स्नान तो बेकार हो गया इसलिए तीर्थ, जाप और दान इनका गुमान करने से ये बेकार हो जाते हैं।

कई बार ऐसा हो जाता है कि हमारा ध्यान ही नहीं जाता। हम किसी के लिए कुछ त्याग नहीं कर पायें तो मन में दु:ख होता है। पिताजी आए थे, वे खड़े थे और हम बैठे-बैठे बात करते रहे। वे खड़े रह गए, हमार ध्यान ही नहीं गया, हम बैठे रह गये। ऐसी वृत्ति हो जानी चाहिए कि ऐसा होने पर मन में दु:ख महसूस हो।

श्रीभगवान किसी की बात काटते नहीं हैं। अपनी बात जोर देकर कहते हैं कि सीखो। वे उत्तम वक्ता हैं, चतुर श्रोता के बाद में क्या प्रश्न आने वाले हैं? उनके उत्तर पहले ही दे देते हैं।

18.6

एतान्यपि तु कर्माणि, सङ्गं (न्) त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ, निश्चितं (म्) मतमुत्तमम्॥18.6॥

हे पार्थ ! इन (यज्ञ, दान और तपरूप) कर्मों को तथा (दूसरे) भी (कर्मों को) आसक्ति और फलों की इच्छा का त्याग करके करना चाहिये - यह मेरा निश्चित किया हुआ उत्तम मत है।

विवेचन: श्रीभगवान कहते हैं, "हे पार्थ! इन यज्ञ, दान और तपरूप कर्मों को तथा और भी सम्पूर्ण कर्मों को आसक्ति और फलों की इच्छा का त्याग करके करना चाहिये- यह मेरा निश्चित मत है। श्रीभगवान अर्जुन की वृत्ति समझ गये थे कि यह संन्यास और त्याग के लिए पूछ रहा है। यह युद्ध से भागना चाह रहा है। श्रीभगवान ने कहा कि मैं तुम्हें त्याग और संन्यास के विषय में अवश्य बताऊँगा, पर

तुम क्या करना चाहते हो, यह देखो। कर्म और कर्मफल की आसक्ति को छोड़ो।

सेठ जी जयदयालजी गोयन्दका के मन में अहङ्कार लेश मात्र भी नहीं था। एक बार उनसे एक सत्सङ्गी ने पूछा कि जब सत्सङ्गी लोग आपकी प्रशंसा करते हैं, आपकी ओजस्वी वाणी की प्रशंसा करते हैं, तो क्या आपको अहङ्कार नहीं आता? वह बोले कि "अहङ्कार तो नहीं आता, अपितु लगता है कि सामने वाला उदार प्रवृत्ति का है। मेरी कैसी भी बात को सुनकर वह बोलता है कि आप बहुत अच्छा बोलते हो।" यह सद्गुण की पराकाष्ठा है।

निश्चितम् उत्तमम् मम। श्रीभगवान कह रहे हैं कि यह मेरा निश्चित, उत्तम मत है।

आगेश्रीभगवान अर्जुन को तीन प्रकार के यज्ञ, दान तथा तप के बारे में बताते हैं। इस पर आगे चर्चा करेंगे।

कर्म की महिमा पर एक सुन्दर भजन है-

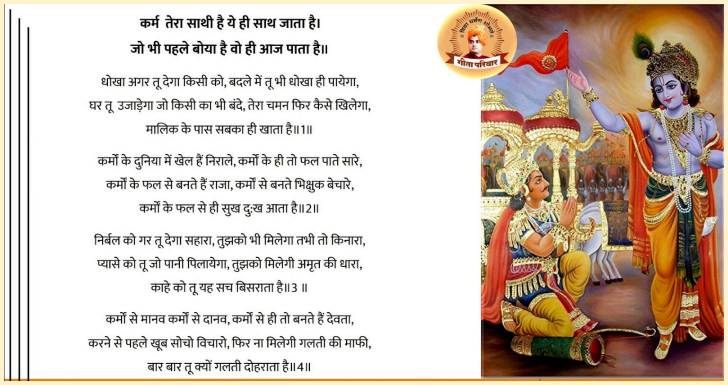

इसके साथ ही हरिनाम सङ्कीर्तन के उपरान्त सत्र का समापन हुआ। उसके पश्चात् साधकों की जिज्ञासा का समाधान किया गया।

प्रश्नोत्तर:-

प्रश्नकर्ता:- अलका दीदी

प्रश्न:- लक्ष्मण जी को माता सुमित्रा माता ने वन जाने की अनुमति दी, वे अत्यन्त प्रसन्न भी हुईं कि लक्ष्मण जी बड़े भाई की सेवा में जा रहे हैं, क्या माता को पत्नी उर्मिला का ध्यान नहीं रखना चाहिए?

उत्तर:- पत्नी को सँभालने के लिये सुमित्रा माता स्वयं पूरे परिवार के साथ वहाँ पर हैं। राम-सीता अकेले वन को जा रहे हैं, इसलिये उनकी सहायता के लिये कोई होना चाहिये। भारतीय एवम् पश्चिमी दर्शन भिन्न हैं। पाश्चात्य दर्शन व्यक्तिगत सुख का विचार रखता है कि पत्नी का सुख कैसा होना चाहिये? भारतीय दर्शन समष्टि का विचार करता है कि आवश्यकतानुसार सभी के सुख का ध्यान होना चाहिये। भारत में आदर्श, समस्त संसार का कल्याण कैसे हो इसे माना गया है, व्यक्तिगत सुख को नहीं। राम जी संसार के आधार हैं, उनका ध्यान भी रखा जाना आवश्यक है। अपने कर्त्तव्य को श्रेष्ठ मान कर आगे बढ़ने के कारण ही आज इतने वर्ष बाद भी लक्ष्मण जी सम्माननीय हैं।

प्रश्नकर्ता:- अन्नपूर्णा दीदी

प्रश्न:- अपरा एवम् परा का क्या अर्थ है?

उत्तर:- अपरा प्रकृति- जो भी है, दिखाई देता है, जिसकी हम कल्पना कर सकते हैं, जिसका हम अनुभव कर सकते हैं वह अपरा प्रकृति है। सूर्य, तारे, ग्रह, पृथ्वी जिन्हें हम देख रहे है, अनुभव कर रहे हैं सब अपरा प्रकृति है। परा प्रकृति- वह है जो इन सबसे पार है। हम मन, शरीर, बुद्धि को देख सकते हैं किन्तु उस चेतना को देख नहीं सकते, स्पर्श नहीं कर सकते, वह परा प्रकृति है।

प्रश्नकर्ता:- अनुराग भैया

प्रश्न:- हमें अपनी सन्तानों का पालन करना होता है, बच्चों का पालन करते हुए किस-किस कर्म का पालन करें?

उत्तर:- समय समय पर सभी पाँचों कर्मों का पालन करना पड़ता है। नियत कर्म के पाँच प्रकार नित्य, नैमित्तिक, काम्य, प्रायश्चित, आवश्यक को समय-समय पर पालन करना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता:- आशु दीदी

प्रश्न:- सेवाकाल में यदि कोई गलती हो गई हो तो उसका प्रायश्चित कैसे करें?

उत्तर:- आपके द्वारा कुछ भी ग़लत नहीं हुआ। न्यायाधीश यदि पद पर रहते हुए किसी को दण्ड दे तो वह दोषी नहीं होगा। यह उसका कर्त्तव्य है, यदि वह दण्ड नहीं देगा तो वह दोषी होगा। वह कार्य करना पद का दायित्त्व होता है, एक नहीं तो कोई दूसरा उस कार्य को करेगा। इसमें पश्चाताप की आवश्यकता नहीं होती।

प्रश्नकर्ता:- अनिता दीदी

प्रश्न:- यज्ञ और त्याग में क्या अन्तर है?

उत्तर:- यज्ञ- कर्त्तव्य करना। अपने का कर्ता न मान कर प्रत्युत कर्त्तव्य मान कर कर्म करना यज्ञ है। उसमें त्याग भी आयेगा। ये एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

प्रश्नकर्ता:- वन्दना दीदी

प्रश्न:- हम बहुत से तीर्थ स्थलों में जाते हैं, वहाँ प्रसाद मिलता है। उसे स्वीकार करना चाहिये या नहीं?

उत्तर:- प्रसाद स्वीकार नहीं करना चाहिये, किन्तु थोड़ा ले लेने में कोई बुराई नहीं है। प्रसाद लेने के बाद दान स्वरूप कुछ देना चाहिये। जगन्नाथपुरी जैसे कुछ ऐसे तीर्थ स्थल हैं, जहाँ का प्रसाद ग्रहण करना आवश्यक होता है किन्तु कुछ दान स्वरूप देना चाहिये।

प्रश्नकर्ता:- वीना दीदी

प्रश्न:- हम गीता पाठ कितनी बार कर सकते हैं?

कई बार हम श्रीभगवान को कर्म अर्पण नहीं कर पाते, क्या उससे पाप लगता है?

उत्तर:- अपने समय एवम् सुविधानुसार जितना अधिक करें उतना अच्छा है।

हम विधि कर्मों को ही अर्पित कर सकते है, निषिद्ध कर्मों को नहीं। जूठा भोजन हम श्रीभगवान को अर्पित नहीं कर सकते हैं। विहित कर्म ही अर्पण के योग्य हैं।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||